आखर हिंदी पत्रिका e-ISSN-2583-0597 खंड 3/अंक 1/जनवरी 2023
Received: 20/01/2023; Published: 31/01/2023

आत्मकथा

एक जगह बस जाने की दिव्य घड़ी

करुणालक्ष्मी.के.एस.
असिस्टेंट प्रोफेसर ऑफ हिन्दी
सरकारी प्रथम दर्जा कॉलेज, बेट्टंपाडी
कर्नाटक
मूल: श्री कुप्पे नागराज (कन्नड़)

करुणालक्ष्मी.के.एस., एक जगह बस जाने की दिव्य घड़ी ; आत्मकथा, आखर हिंदी पत्रिका, खंड3/अंक1/जनवरी 2022,(107-111)

'अलेमारिय अंतरंग' कन्नड भाषा की आत्मकथा है, जिसके लेखक हैं श्री कुप्पे नागराज। कुप्पे नागराज कर्नाटक के राजकोष विभाग में अवकाश प्राप्त अफसर हैं। 'दोंबिदास' कर्नाटक का एक प्रमुख घुमंतू समुदाय है। श्री कुप्पे नागराज जी ने अपनी इस आत्मकथा में अपने समुदाय के आचार-विचार, रहन-सहन, संस्कृति का विवरण दिया है। साथ ही एक अलक्षित समुदाय के लोगों की व्यथा कथा को भी प्रस्तुत किया है। जिसका मैंने हिन्दी में 'घुमक्कड़ का अंतरंग' नाम से अनुवाद किया है। यह आत्मकथा हिन्दी, तेलुगु, मराठी भाषाओं में अनूदित है।

इतनी बड़ी धरती पर मेरे पिताजी की अपनी कहलानेवाली हथेली भर ज़मीन भी नहीं थी। कहा जाता है, कहीं पर भी आसरा न पाकर मेरे पिताजी अपना पारंपरिक झोला बगल में लटकाकर गाँव-गाँव भटकते हुए दक्षिण की सीमा से इस गाँव की ओर आए थे। वे अपने दादा-परदादाओं से उपहार के रूप में मिली हुई वृत्ति यानी भिक्षाटन को आजीविका बनाकर चले थे। गाँवों में पद सुनाकर, गाना गाकर, नाटक खेलते हुए, हरिकथा करते हुए जहाँ बारिश अच्छी होती है, उस तरफ पिताजी अपने परिवार का रथ आगे बढ़ाते हुए जा रहे थे। जहाँ उनका मन बहल जाता, जहाँ कुछ समय ठहरने के लिए अनुकूल वातावरण मिलता, वहीं पर वे अपने परिवार

को कुछ दिनों के लिए ठहरा देते। रुकी हुई जगह पर ही मेरी माँ तीन पत्थर जोड़कर चूल्हा बना लेती, इधर - उधर बिखरे पड़े सूखे पत्तों से चूल्हा जलाकर हमारे भोजन का इंतज़ाम करती।

मेरे पिताजी माथे पर भस्म धारण करके, सर पर रूमाल बाँधकर, सफेद शर्ट, सफेद धोती पहन लेते। वे शर्ट पर किसी से माँगकर पाया हुआ पुराना कोट पहनकर, बगल में झोला लटकाकर हाथ में इकतारा या सुरपेटी पकड़कर अपने रोज़ाने काम पर निकल पड़ते। इस तरह गाँव -गाँव भटकते हुए कहीं पर भी ठिकाना न पाकर जंगमावस्था में ही हमारा परिवार विचर रहा था।

पता नहीं, इस तरह का जीवन बसर करनेवाले मेरे पिताजी को यह गाँव कैसे पसंद आया। गाँव के लोग मेरे पिताजी द्वारा गायी जानेवाली लावनियाँ[1], कथन-गीत, बजाए जानेवाले वाद्य, नाटक के डायलॉग, वेशभूषाएँ और नाटक के पात्रों से बहुत आकर्षित हुए थे। मेरे पिताजी बालग्रह[2] से पीड़ित बच्चों को तावीज़ बाँधकर, उनके माथे और पेट पर भस्म मलकर इलाज़ करते थे। वे ज्योतिष के अपने सीमित ज्ञान के आधार पर ही शुभ-अशुभ मुहूर्तों का निर्णय करके अच्छे कामों के लिए शुभ मुहूर्त निकालते थे। इन सबसे गाँव में मेरे पिताजी की लोकप्रियता बढ़ने लगी। गाँव के लोग मेरे पिताजी को पसंद करने लगे। इतना ही नहीं, कौड़ी डालकर पिताजी बता देते कि खोए हुए मवेशी किस दिशा में मिलेंगे। आश्चर्य की बात यह होती कि मवेशी उनके द्वारा बतायी हुई दिशा में ही मिल जाते और मेरे पिताजी की भविष्यवाणी सच निकलती। इन सारे कामों के अलावा पिताजी झाड़-फूँक करके हाथ पाँवों में मोच आए गाँववालों को पीड़ामुक्त करते थे और जड़ी-बूटियों से दवा-दारू करके लोगों का इलाज भी करते थे। एक नहीं, दो नहीं,सैकड़ों तरह के लोकज्ञान से संपन्न मेरे पिताजी को गाँववाले बहुत पसंद करने लगे।

[1] लावनी- कर्नाटक,आंध्र प्रदेश आदि में प्रचलित लोकगीत का एक प्रकार

[2] बालग्रह- बच्चों की एक बीमारी

इस तरह गाँव से हमारा संबंध स्थापित हुआ , जिससे मेरे पिताजी खानाबदोशी के जीवन से विश्राम लेकर बड़े गौडाजी के बड़े घर के चबूतरे पर परिवार सहित टिक गए। उस समय तक हमारी तरह उस गाँव में आकर बसे हुए और दो दास[3] परिवारों को भी मिलाकर हमारे तीन दास परिवार वहाँ बस गए थे।

इन तीनों परिवारों के मिलने से नाटक प्रदर्शन के लिए एक मण्डली रचित हुई। बिना किसी आसरे के अनिश्चित स्थिति में गाँव-गाँव भटक रहे हम लोगों को एक तात्कालिक आसरा मिलते ही बहुत राहत मिली। पत्नी और हम तीन बच्चों के परिवार को पालने के लिए पिताजी उस गाँव के आस-पास के आठ-दस गाँवों में भिक्षावृत्ति कर रहे थे। यह उनकी पारंपरिक वृत्ति थी। ग्रामीण लोग इस वृत्ति को बहुत आदर देते थे। दासों द्वारा गाए जानेवाले गीत, कथन-गीत, तत्वपद आदि भारतीय संस्कृति के प्रमुख अंश थे ही। दासलोग इस संस्कृति को लोगों के बीच प्रसारित करनेवाले थे। इनके द्वारा गाए जानेवाले गीत तथा लावनियों में रामायण, महाभारत, भागवत जैसे महाकाव्यों के प्रसंग तथा लोकनायकों के जीवनवृत्त भी निहित थे। अनपढ़ ग्रामीण समुदाय को नैतिक बोध, सत्य, धर्म और न्याय- नीतियों का पाठ इन दासों की भिक्षावृत्ति के माध्यम से मिलता था। ये लोग संस्कृति के प्रचारक होने के साथ-साथ मनोविकास और मनोरंजन की मिठास भी लोगों में बाँटते फिरते थे।

मेरे पिताजी ने अन्य कई दास लोगों के साथ मिलकर एक नाटक मण्डली रची थी। दासलोग गाँव-गाँव घूमते हुए 'भक्त प्रह्लाद', 'शनि माहात्म्य', 'गंगा-गौरी', 'कंसवध' आदि नाटक खेलते थे। गाँव की मुख्य सड़क पर रंगमंच का निर्माण करके, गाँव के लोगों से अच्छी साड़ियाँ माँगकर राजा-रानी की वेशभूषा पहनकर दासलोग गाँववालों का मनोरंजन करते थे। किसी भी नाटक हो, मेरे पिताजी रात भर मंच पर बने रहते, क्योंकि नाटक में वे हमेशा 'कोडंगी'[4] का किरदार निभाते थे। राजा, रानी, मंत्री, सेनापति, दैत्य आदि बड़े-बड़े पात्रों के बीच कोडंगी का होना अनिवार्य था। 'कोडंगी' अपने हास्य से भरे संभाषण और अपनी अंगचेष्टाओं से रातभर प्रेक्षकों का मनोरंजन करके हँसानेवाला विशिष्ट पात्र होता है। संभाषण, गीत, पद तथा संदर्भों को भूलनेवाले अन्य पात्रों को अपने विशिष्ट संकेतों से, हावभाव से याद दिलाते हुए, नाटक में कहीं पर भी रुकावट न आने देते हुए मेरे पिताजी नाटक को सुचारु रूप से आगे बढ़ाते थे।

मेरे पिताजी के माता-पिता ने उनका नाम 'सिंगय्या' रखा था। हमेशा नाटकों में कोडंगी का किरदार निभाने के कारण लोग उन्हें 'कोडंगय्या' नाम से ही पहचानते थे। बाद के दिनों में रेविन्यू रिकॉर्डों में भी उनका नाम 'कोडंगय्या' ही दाखिल हो गया और जनमानस में भी वही नाम बस गया। उनका मूलनाम 'सिंगय्या' नेपथ्य में चला गया।

---

[3] दास अथवा दोंबीदास कर्नाटक का एक प्रमुख घुमक्कड़ समुदाय है। इस समुदाय के लोग पद गाते हैं, हरिकथा का पारायण करते हैं और भिक्षाटन को अपनी आजीविका बनाकर घुमक्कड़ जीवन बिताते हैं।

[4] कोडंगी- नाटक को आगे बढ़ाने में सहायक और लोगों का मनोरंजन करनेवाला पात्र है। इसकी वेशभूषा विशिष्ट होती है। मुँह पर काला रंग पोतकर विचित्र रीति से कपड़े पहनकर हास्य रस का सिंचन करते हुए यह कोडंगी नाटक की एकरसता को दूर करता है

मेरे पिताजी नाटक और धार्मिक भिक्षाटन करते थे, उन्हें खेतीबाड़ी का तनिक भी ज्ञान नहीं था। मेरी माँ कुल की वृत्ति नहीं जानने की वजह से मजदूरी करती थी। दोनों के परिश्रम से हम चार बच्चों का पेट भरता था। पिताजी रोज़ सुबह-सुबह उठकर हाथ-मुँह धोकर माथे पर भस्म धारण करके, सिर पर सफेद पगड़ी बाँधकर, बगल में झोला लटकाकर, एक हाथ में इकतारा पकड़कर घर से निकल पड़ते थे। यह उनकी दिनचर्या थी। सामान्यतः भिक्षाटन के लिए जाते समय दो-तीन दास लोग मिलकर साथ-साथ जाते थे, पर कभी- कभी मेरे पिताजी अकेले भी चले जाते थे।

हमारे लिए पिताजी का झोला कामधेनु-कल्पवृक्ष की तरह था। उस झोले में तीन हिस्से थे। पिताजी भिक्षा डलवाते समय एक हिस्से में धान, रागी, ज्वार आदि डलवा लेते थे, दूसरे हिस्से में रागीमुद्दे[5] ,चावल, रोटी डलवाते थे और बचे हुए हिस्से में दाने, मिर्ची आदि मसाले डलवाते थे। वह झोला हमारी भूख मिटानेवाला अक्षयपात्र जैसा था । पिताजी के भिक्षाटन से लौटते ही माँ बहुत जतन से उसमें भरे हुए दाने, आटे आदि अलग करती थी। वह पहले रागी के आटे को झोले में से निकालकर उसमें मिले हुए चावल आदि अन्य दानों को अलग करती थी, उसके बाद दूसरे हिस्से से दानों को बाहर निकालकर सांबार[6] बनाने के लिए चूल्हे पर चढ़ाकर कुछ ही समय में रागीमुद्दे, अन्न और सांबार का भोजन तैयार करती थी। यह तैयारियाँ पूर्ण होकर खाना बनने तक हम गहरी नींद के बस में चले गए होते थे। खाना बनने के बाद माँ हमें जगाकर भोजन करवाती थी और खुद बचा हुआ खाना खाकर सो जाती थी। इस तरह हमारा जीवन चल रहा था। पिताजी कभी-कभार भिक्षाटन से लौटते समय किसी जानवर या पक्षी का शिकार करके लाते। वे शिकार के लिए आवश्यक जाल आदि अन्य सामग्रियों को हमेशा अपने झोले में ही रखकर घूमते थे।

इस तरह वह गाँव और गाँववालों का प्यार हम जैसे यायावरों के लिए एक आसरा बन गया, गाँववालों के चबूतरे पर बना बाहरी कमरा हमारा जन्मस्थान बना। किसी के ओसारे पर छः महीने, और किसी के चबूतरे पर छः महीने- इस तरह जीवन बितानेवाले हम जैसे लोगों के परिवारों को भी एक निश्चित आसरा मिलने का समय आखिर आ ही गया। एक दिन हमारे गाँव के पटेल और चेयरमन, सहृदयी सज्जन पुट्टमल्लप्पा जी को पता नहीं क्या सूझा, उन्होंने दास लोगों को यह सूचना दी, "अब आप लोगों के परिवार भी बड़े हो रहे हैं, आप मैसूर-हुणसूर मुख्य सड़क पर जो चरागाह है, वहाँ पर अपनी झोंपड़ी बना लीजिए।"

उस जगह के दाहिने आधे किलोमीटर फासले पर जो गाँव था उसमें सवर्ण लोग थे, बायीं ओर हरिजनों का एक और गाँव था, बीच में हमारी यानी दासों की नई झोंपड़ियाँ सर उठाने लगीं। झोंपड़ियाँ निर्मित करने के

[5] रागिमुद्दे कर्नाटक का लोकप्रिय खाद्य है। इसे बनाने के लिए उबलते हुए पानी में रागी का आटा मिलाकर पकाया जाता है। पकने के बाद गोल आकार बनाकर सांबार अथवा चट्नी के साथ परोसा जाता है। यह किसान लोगों का अत्यंत प्रिय भोजन है।

[6] सांबार- चावल,इडली और मुद्दे के साथ खाया जानेवाला एक तरल पदार्थ जो दाल और सब्जियों से बनता है। यह दक्षिण भारतवासियों के दैनंदिन भोजन का अंग है।

लिए, छाजन पर छाने के लिए जो लकड़ी आदि अन्य चीज़ों की ज़रूरत पड़ी, उन्हें देकर गाँववालों ने हमारा बड़ा उपकार किया। दाहिनी और बायीं ओर सवर्णों और हरिजनों की बस्तियाँ दासों की झोंपड़ियों के लिए रक्षात्मक दीवारों की तरह थीं और हम कलाकारों का दाससमुदाय वहाँ पर बस गया।

हमारे दोंबीदासों द्वारा खेले जानेवाले नाटकों से प्रभावित होकर गाँव के अन्य लोग भी नाटक सीखने लगे। हमसे नाटक की तालीम लेकर हरिजनों की बस्ती में कोई नाटक सिखाने लगता, तो सवर्णों की बस्ती का कोई नाटक सीखने हमारे पास आता। इस तरह गाँव के सभी समुदाय के लोगों को नाटक की तालीम देते हुए, उनका मार्गदर्शन करते हुए समरसता का जीवन बिताने के लिए यह दास समुदाय अपना योगदान देने लगा।

****